दुवासू पशुधन पत्रिका

उ.प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवम् गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा-281001

अंक : पञ्चदश

संस्करण : जुलाई 2021

संरक्षक :

प्रो. जी. के. सिंह

कुलपति, दुवासू

प्रधान सम्पादक :

डॉ. सर्वजीत यादव

निदेशक प्रसार, दुवासू

सम्पादक :

डॉ. गुलशन कुमार

डॉ. अमित सिंह

डॉ. आशीष श्रीवास्तव

डॉ. दीप नारायण सिंह

डॉ. मुनीन्द्र कुमार

प्रकाशक :

समन्वयक

संचार केन्द्र,

उ.प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय

पशु चिकित्सा विज्ञान

विश्वविद्यालय एवम् गो

अनुसंधान संस्थान, दुवासू,

मथुरा

deduvasu@gmail.com

दुवासू प्रकाशन संख्या : 252

मुद्रण :

यमुना सिंडिकेट

मथुरा

माननीय कुलपति के कलम से

प्रिय पशुपालक भाइयों,

सादर नमस्कार

उ.प्र. पं. दीनदयाल उपाध्याय पशुचिकित्सा विज्ञान एवं गो अनुसंधान संस्थान, (दुवासु) मथुरा द्वारा प्रकाशित पशुधन पत्रिका के पञ्चदश (प्रथम अंक) संस्करण को आत्मनिर्भर भारत जैसे समीचीन विषय पर प्रकाशित करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है ।

माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा जो आत्मनिर्भर भारत का नारा दिया गया है, वह सही मायनों में तभी फलीभूत हो सकता है, जब हमारे किसान व पशुपालक आत्मनिर्भर हों। ऐसा तभी संभव है जब हमारे पशुपालक, पशुपालन के विभिन्न आयामों जैसे कि पशु-प्रजनन, पशुपोषण एवम् स्वास्थ्य-प्रबन्धन की उन्नत तकनीकी तथा विधियों से परिचित हों तथा उन्हें अपनायें भी। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अंक में देशी गायों की नस्लों, सन्तुलित पशुपोषण तथा शीत ऋतु में बकरियों के प्रबन्धन जैसे लेख प्रस्तुत किये गये हैं। इनके अतिरिक्त पशुओं के उपचार हेतु विभिन्न घोल एवम् मलहम बनाने तथा इनके उपयोग की विधि भी बताई गयी है जो कि पशुपालकों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

पशुपालन व्यवसाय में ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करने तथा उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाने की अपार संभावनाएं हैं। संभवत: इस बात ध्यान में रखते हुए पिछले कुछ वर्षों से कृषि व पशुपालन से पशुपालकों की आय दोगुना करने पर अधिक बल दिया जा रहा है। इस संस्करण के प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य हमारे पशुपालको के आर्थिक विकास में विभिन्न पशुओं की भूमिका के संबंध में आवश्यक जानकारियाँ उपलब्ध करा कर आत्मनिर्भर बनाना है। पशुधन पत्रिका का यह अनवरत प्रयास है कि विभिन्न ज्ञानवर्धक व रुचिकर लेखों के माध्यम से किसानों व पशुपालकों का पशुपालन तथा उत्पादन में सहयोग किया जाये। भविष्य में भी इसी प्रकार आपके लिये उपयोगी लेख प्रकाशित किये जाते रहेंगे। अत: अपनी इस पत्रिका को अधिक ज्ञानोपरक बनाने हेतु पशुपालकों, छात्रों, वैज्ञानिकों से सुझाव आमंत्रित है तथा आप इस पत्रिका को पढ़कर अपने सुझाव अवश्य भेजें।

शुभकामनाओं सहित,

आपका अपना

(जी. के. सिंह)

इस अंक में ...

"उन्नत पशुपालन : आत्मनिर्भर भारत"

आत्मनिर्भर भारत

भारतीय गाय की प्रमुख नस्लें

शीत ऋतु में बकरियों की देखभाल एवम् प्रबन्धन

जापानी एन्सेफलाइटिस (जापानी मस्तिष्क ज्वर) - एक पशुजन्य रोग

शीत ऋतु में बकरियों की देखभाल एवम् प्रबन्धन

सन्तुलित पशुपोषण: आत्मनिर्भर पशुपालक

कीटोसिस

सामिष भोजन के गुण संर्वधन हेतु विविध पाक विधियाँ

टर्की पालन : किसानों के लिये एक लाभदायक व्यवसाय

पशुओं के खुर की उचित देखभाल एवं प्रबन्धन

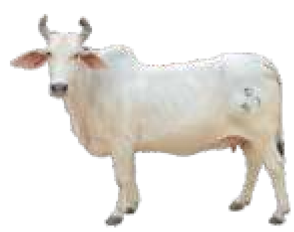

भारतीय गाय की प्रमुख नस्लें

विजय कुमार, एस. पी. सिंह एवम् अवनीश कुमार

सदियों से मनुष्य किसी न किसी तरीके से पशुओं पर निर्भर है। पुराने समय से ही मनुष्य पशुओं को प्रयोग में ला रहे हैं। यदि खेती की बात करें तो पशुओं का इसमें बहुत बड़ा योगदान है जैसे किसान पुराने समय में खेती के कामों में प्रयोग करता था जैसे बैल की सहायता से खेत की जोताई कर फसल की बिजाई की जाती है। वर्तमान समय में भी पशु एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। देश की अर्थव्यवस्था में पशुओं का अभिन्न योगदान है। यदि भैंस और गाय की बात करें तो इनका जैविक खेती में एक महत्वपूर्ण योगदान है । इनके मल मूत्र से खाद तैयार की जाती है। इनके गोबर से वर्मीकम्पोस्ट तैयार की जाती है। इसके अलावा कीटनाशक बनाने में भी इनका मूत्र प्रयोग किया जाता है। यदि किसान के घर पशु हैं तो उसका खेती में बहुत कम खर्चा होता है क्योंकि वह खाद भी घर में ही तैयार कर सकते हैं और कीटनाशक भी। गांव में अभी भी एक जगह से दूसरी जगह चारा या अनाज को लेकर जाने के लिए पशुओं की आवश्यकता पड़ती है। जिसके साथ उनके यातायात के साधन भी पशु है। पशुपालन भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण क्षेत्र है। गौ–पशु एवं भैसों द्वारा जुताई, यातायात और कुओं से पानी खींचने जैसी कृषि संबंधी गतिविधियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की जाती है। उनसे हमें दूध और दूध से बने उत्पाद प्राप्त होते हैं। पशु कृषि खाद एवं ऊर्जा (गोबर के उपलों के रूप में) के अच्छे स्रोत हैं। इस रूप में ये पौधों से प्राप्त पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण में सहायक होते हैं। पशु आहार निर्माण, तथा डेयरी उपकरणों के निर्माण आधारित उद्योगों के माध्यम से पशुओं द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार अवसरों का सृजन किया जाता है।

भारत की प्रमुख दुधारू नस्लें

साहीवाल गाय: साहीवाल भारत की सर्वश्रेष्ठ गाय की प्रजाति है। यह गाय प्रति ब्याँत 2000 से 3000 लीटर तक दुग्ध उत्पादन कर सकती है जिसकी वजह से ये दुग्ध व्यवसायी इन्हें काफी पसंद करते हैं। यह गाय एक बार ब्याने पर करीब 10 महीने तक दूध देती है। साहीवाल प्रजाति की गायें प्रायः लाल रंग की होती हैं। ये मुख्यतः पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, बिहार व मध्य प्रदेश में पायी जाती हैं। साहीवाल गाय का मूल उत्पत्ति स्थान पाकिस्तान में है। इन गायों का सिर चौड़ा उभरा हुआ, सींग छोटी और मोटी, तथा माथा मझोला होता है। गाय भारत में कहीं भी रह सकती हैं। इस नस्ल की गाय लगभग 10–20 लीटर दूध प्रतिदिन दे सकती है। इनके दूध में वसा की मात्रा भी अन्य नस्ल व विदेशी नस्ल की गायों को तुलना में अधिक होती है। इसके दूध में वसा 4 से 6 प्रतिशत पाई जाती है।

रेड सिंधी : इस नस्ल की गाय का रंग लाल बादामी होता है। आकर में साहीवाल से मिलती जुलती होती है। इसमें रोगों से लड़ने की अद्भुत क्षमता होती है। वयस्क गाय का वजन औसतन 350 किलोग्राम तक होता है। लाल रंग की इस गाय को अधिक दुग्ध उत्पादन के लिए जाना जाता है। लाल रंग होने के कारण इनका नाम लाल सिंधी गाय भी है। यह गाय पहले सिर्फ सिंध इलाके में पाई जाती थीं। लेकिन अब यह गाय पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल और ओडिशा में भी पायी जाती हैं। इनकी संख्या भारत में काफी कम है। साहीवाल गायों की तरह लाल सिंधी गाय भी सालाना 2000 से 3000 लीटर तक दूध देती हैं।

गीर : इसका मूल स्थान गुजरात के काठियावाड का गिर क्षेत्र है। इसके शरीर का रंग पूरा लाल या सफेद या लाल सफेद काला सफेद हो सकता है। गिर गाय को भारत की सबसे ज्यादा दुधारू गाय माना जाता है। भारत के अलावा इस गाय की विदेशों में भी काफी मांग है। ब्राजील में मुख्य रुप से इन्हीं गायों को पाला जाता है। ये प्रतिदिन 6 से 10 लीटर या इससे अधिक दूध देती हैं। राजस्थान में इन्हे रैण्डा व अजमेरी के नाम से भी जाना जाता है। गीर गाय किसानों की आमदनी कई गुना तक बढ़ा सकती है।

थारपारकर : ये गायें दुधारू होती हैं इनका रंग खाकी, भूरा, या सफेद होता है। कच्छ, जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर और सिंध का दक्षिण–पश्चिमी रेगिस्तान इनका प्राप्ति स्थान है। इस नस्ल की औसत दुग्ध उत्पादन क्षमता 10 लीटर प्रतिदिन तक होती है।

काँकरेज : कच्छ की छोटी खाड़ी से दक्षिण–पूर्व का भूभाग अर्थात् सिंध के दक्षिण–पश्चिम से लेकर अहमदाबाद और रधनपुरा तक का भाग काँकरेज गायों का मूलस्थान है। इस नस्ल की गाय काठियावाड़, बड़ोदा और सूरत में भी पायी जाती हैं। ये सर्वांगी गायें हैं और इनकी माँग विदेशों में भी है। इनका रंग रुपहला भूरा, लोहिया भूरा या काला होता है। टाँगों पर काले चिह्न तथा खुरों के ऊपरी भाग काले होते हैं। ये सिर उठाकर लंबे और सम कदम रखती हैं। चलते समय टाँगों को छोड़कर शेष शरीर स्थिर प्रतीत होता है जिससे इनकी चाल अटपटी मालूम पड़ती है।

हरियाना : गायों का रंग सफेद, मोतिया या हल्का भूरा होता हैं। ये ऊँचे कद और गठीले बदन की होती हैं तथा सिर उठाकर चलती हैं। इनका प्राप्ति स्थान रोहतक, हिसार, सिरसा, करनाल, गुडगाँव और जींद है।

संकर गायों की प्रमुख नस्लें

वृन्दावनी : इस नस्ल को तैयार करने में ब्राउन स्वीस, जर्सी, हालीस्टीन फ्रीजियन सांड़ तथा हरियाना देशी गायों का उपयोग किया गया था । तथा यह उ.प्र. के बरेली जिले के आस पास पायी जाने वाली नस्ल है। इस नस्ल की त्वचा एवं बालों का रंग काले एवं भूरे रंग का मिश्रण, सींग–मध्यम आकार के माथा हलका धसा हुआ होता है। इस नस्ल मे पूर्ण रूप

से विकसित अयन, थन मोटी घुमावदार एवं स्पश्ट दुग्ध सिरायें व पिछला हिस्सा भारी तथा अगला हिस्सा हलका होता है । इस नस्ल की औसत दुग्ध उत्पादन क्षमता 3000–3700 किग्रा (305 दिन) है।

करन फ्रिज : इस नस्ल को तैयार करने में हालीस्टीन फ्रीजियन सांड़ तथा थारपारकर देशी गायों का उपयोग किया गया था । तथा यह करनाल, हरियाना के आस पास पायी जाने वाली नस्ल है। इस नस्ल की त्वचा एवं बालों का रंग सफेद एवं काले रंग का मिश्रण, चमकीली त्वचा, चेहरा – सिर लम्बा एवं पतलाए ऊपर की ओर उठता हुआ चौकन्ने एवं मघ्यम आकार के कान, अयन एवं थन– विकसित एवं बड़े अयन, लम्बे थन, पूर्ण विकसित एवं स्पष्ट दुग्ध सिरायें होती है। इस नस्ल की औसत दुग्ध उत्पादन क्षमता 4000 किग्रा (305 दिन) है।

फ्रिजवाल : इस नस्ल को तैयार करने में हालीस्टीन फ्रीजियन सांड़ तथा साहीवाल गाय का उपयोग किया गया था । तथा यह उ.प्र. के मेरठ जिले के आस पास पायी जाने वाली नस्ल है। इस नस्ल की त्वचा एवं बालों का रंग सफेद एवं काले/भूरे रंग का मिश्रण, अयन एवं थन–विकसित एवं बड़े अयन, लम्बे थन, पूर्ण विकसित एवं स्पष्ट दुग्ध सिरायें होती है। इस नस्ल की औसत दुग्ध उत्पादन क्षमता लगभ्ग 3000–3700 किग्रा (305 दिन) होती है।

सन्तुलित पशुपोषण : आत्मनिर्भर पशुपालक

मुनीन्द्र कुमार, सौरभ प्रताप सिंह एवम् पूजा पाण्डे

हमारे देश में कृषि एक मुख्य व्यवसाय है जिसमें पशु–पालन कृषि व्यवसाय का एक अभिन्न अंग है। पशुओं का पोषण प्रमुख रूप में कृषि उपज पर निर्भर करता है। हमारा देश विश्व में पशुओं की महिशसंख्या में प्रथम, गौसंख्या में द्वितीय, भेड़ों की संख्या तृतीय, बकरियों की संख्या में द्वितीय, शूकर की संख्या में पंचम व कुक्कुट की संख्या में छठे स्थान पर है। पशुओं के पोषण के लिए उपलब्ध दाना, चारा व दूसरे कृषि उत्पादों की मात्रा आवश्यकता से कम है। भूसा व सूखे चारे की उपलब्धता लगभग 40.4 प्रतिशत, हरे चारे की उपलब्धता 25 प्रतिशत तथा दाने की उपलब्धता 47.1 प्रतिशत आवश्यकता से कम है। इसलिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि इनका उपयोग सही और वैज्ञानिक तरीकों से हो जिससे हम अपने पशुओं से अधिक से अधिक उत्पादन ले सकें। पशुओं के रख–रखाव में प्राय: 60–65 प्रतिशत धन का व्यय पोषण पर ही होता है। इसलिए यह एक आवश्यक पहलू है कि पशुपालन में पशु पोषण पर अधिक ध्यान दिया जाए, जिससे पशुओं को सन्तुलित आहार मिल सके।

सन्तुलित आहार उस खाद्य मिश्रण को कहते हैं जो पशुओं के शरीर को बनाये रखने के लिए तथा उनकी उचित बढ़ोतरी व दूध उत्पादन के लिए कई तरह के खाद्य पदार्थों द्वारा बनाया जाता है, जिसे 24 घण्टों में एक पशु को खिलाया जाता है। इसमें सभी आवश्यक पोषक तत्त्व जैसे ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन आदि उचित मात्रा और सही अनुपात में प्राप्त होते हैं। किसी भी एक खाद्य पदार्थ से सारे पोषक तत्त्व तो मिल जायेंगें परन्तु उसकी मात्रा और अनुपात शरीर की आवश्यकता के अनुसार नहीं होगा। इसलिए पशुओं के सन्तुलित आहार में विभिन्न प्रकार के हरे चारे, कई प्रकार के अनाज, खली, इत्यादि उत्पाद को मिलाकर बनाया हुआ दाना मिश्रण तथा सूखे चारे के प्रयोग में लाये जाते हैं।

पशुपालक के मन में एक इच्छा होती है कि उसके पशु अच्छा दूध दें ताकि वो अच्छी आय प्राप्त कर सके। पशु अधिक दूध तभी देता है जब उसको सन्तुलित आहार खाने को मिलता है। सन्तुलित पशुआहार वैसे तो बहुत कम्पनियाँ बना रही हैं, लेकिन सन्तुलित पशुपालक को यह आहार थोड़ा महँगा पड़ता है। पहले पशुओं के लिए सन्तुलित पशुआहार घर पर ही बनाया जाता था। आज भी ऐसे बहुत से पशुपालक हैं जो अपने पशुओं के लिए घर पर ही सन्तुलित आहार बनाते हैं। सन्तुलित आहार पशुओं के लिए बहुत आवश्यक है क्योंकि सन्तुलित आहार पशुओं में दूध उत्पादन की क्षमता को तो बढ़ाता ही है, साथ ही पशुओं को स्वस्थ भी रखता है। यह कोई कठिन कार्य नहीं है इसको घर पर आसानी से बनाया जा सकता है, इसकी विधि यहाँ दी गई है:

पशु आहार कैसा हो ?

पशु आहार पशुओं द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले विभिन्न शारीरिक क्रिया कलापों हेतु आवश्यक पोषकों का प्रमुख स्रोत होता है। अत: पशु आहार पोषक तत्वों की दृष्टि से सन्तुलित होना चाहिये, जिससे पशुओं को सभी आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा एवम् अनुपात में मिल सकें। पशु आहार के मुख्यतया दो घटक होते हैं– चारा व दाना मिश्रण।

चारा:

पशुओं के आहार में चारे का होना अत्यन्त आवश्यक है। दूधारू पशुओं मे रूमेन के सुचारू रूप से कार्य करने एवम् दुध में सामान्य वसा प्रतिशत बनाये रखने मे चारे का विशेष महत्व होता है। दूधारू पशुओं से अधिक उत्पादन के लिए चारा अधिक से अधिक मात्रा मे खिलाना चाहिए। हरे चारे से पोषक तत्व पशुओं को आसानी से मिल जाते हैं। हरे चारे में विटामिन की मात्रा भी अधिक होती है और पशु भी इसे चाव से खाते हैं। चारे दो प्रकार के होते हैं जैसै सूखा चारा और हरा चारा।

(क) सूखा चारा

सूखे चारे में जल की मात्रा 15 प्रतिशत से कम होती है। सूखी घास, कृषि फसल अवशेष जैसे गेहूँ का भूसा, धान की पुआल, मक्का या ज्वार की कडबी, अरहर की भूसी, आदि। सूखे चारे में हरे चारे की अपेक्षा कम पोषक तत्व होते हैं।

(ख) हरा चारा

दुधारू पशुओं के अच्छे स्वास्थय एवम् अधिक दुध उत्पादन के लिए हरा चारा बहुत आवश्यक है। हरा चार पोष्टिक तत्वों से भरपूर, स्वादिष्ट, पाचक एवम् महंगे दानों कि अपेक्षा सस्ता होता है और इसे अनाज उत्पादन के लिए अनुपयोगी भूमि पर आसानी से उगाया जा सकता है। हरे चारे में जल की मात्रा 15 प्रतिशत से लेकर 80 प्रतिशत तक हो सकती है किन्तु इससे विटामिन प्राप्त होता है। सभी दलहनी एवम् गैर दलहनी चारा, घास, पेड़ के पत्ते आदि इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। सोयाबीन, लोबिया, बरसीम, ल्यूसर्न, ग्वार आदि दलहनी फसल हैं। धान, गेहूँ, जई, ज्वार विभिन्न घास गैर दलहनी फसल हैं। आमतोर पर पशु की शारीरिक निर्वाह की आवश्यकताएँ हरे चारे से पूरी हो जाती हैं। दलहनी हरे चारे, जैसे बरसीम, रिजका, लोबिया, मटर उत्तम श्रेणी के होते हैं। अधिक रसीले चारे के साथ कुछ मात्रा में सूखा चारा मिलाकर ही पशुओं को खिलाना चाहिए, अन्यथा पशुओं में अधिक गैस बनने से अफरा हो जाता है जो बहुत घातक हो सकता है। द्विदलीय हरे चारे के अलावा हरी घास, नैपियर घास, जई, मक्का, ज्वार, बाजरा से भी पर्याप्त पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। हरा चारा एक ऐसा आहार है जिसको पशु को खिलाने पर कम व्यय आता है और कुछ सीमा तक उत्पादकता हेतु भी पोषक तत्वों की पूर्ति कर देता है। अत: कम धनव्यय में पशुओं की उत्पादकता बनाये रखने के लिए हरे चारे का महत्वपूर्ण योगदान है।

दाना मिश्रण

दाना मिश्रण वह मिश्रण है जिसमें दो या दो से अधिक भोज्य पदार्थ होते हैं और पोषक तत्व भी चारे की अपेक्षा अधिक होते हैं। इसमें रेशे की मात्रा 18 प्रतिशत से कम एवम् विभिन्न सुपाच्य पोषक तत्वों से भरपूर होता है। मक्का, गेहूँ, जौ, जई ज्वार, बाजरा आदि अनाज ऊर्जा के स्रोत है और मूँगफली, सोयबीन, बिनौला, सरसों, अलसी आदि की खली प्रोटीन के स्रोत है। दाना मिश्रण में अधिक प्रकार के भोज्य पदार्थ होंगे तो वह अधिक सन्तुलित होगा।

सन्तुलित पशु दाना में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख अवयव:

विभिन्न पोषक तत्वों की प्रचुरता के आधार पर दाना मिश्रण में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख अवयव को हम इन्हें निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं:

1. प्रोटीन का स्रोत- विभिन्न प्रकार की खली जैसे, मूँगफली की खली, बिनौले की खली, सोयाबीन की खली, सरसों की खली, सूर्यमुखी की खली, अलसी की खली, मछली का चूर्ण, मीट चूर्ण, रक्त चूर्ण आदि।
2. ऊर्जा के स्रोत- मुख्यतया सभी आनाज जैसे गेहूँ , मक्का, बाजरा, जी, जई, चावल की पॉलिश, ग्वार एवम् शीरा आदि।
3. फसलों के अन्य उत्पाद गेहूँ की चोकर, चने की चूरी, चने का छिलका, अरहर की चूरी एवम् चावल की चुनी इत्यादि।
4. खनिज मिश्रण - मिनरल मिक्सचर, हर्बल पोषक तत्व, डाई कैल्शियम फॉस्फेट कैलसाइट पाउडर, साधारण नमक, विटामिन ए तथा डी-3 इनसे हमें कैल्शियम फॉसफोरस, तांबा, लोहा, जस्ता आदि कई महत्वपूर्ण खनिज प्राप्त होते हैं।
5. वृद्धि दायी आहार - प्रोबायोटिक, प्रीबायोटिक एवम् हार्मोन आदि।

सौ किलो सन्तुलित आहार बनाने की विधि:

1. **दाना** (मक्का, जौ, गेंहू, बाजरा)- की मात्रा लगभग 35 प्रतिशत होनी चाहिए। चाहे बताए गए दाने मिलाकर 35 प्रतिशत हो या किसी एक ही प्रकार का दाना ही हो तो भी खुराक का 35 प्रतिशत दें।
2. **खली** (सरसों की खली, मूँगफली की खली, बिनौले की खली, अलसी की खली)- इसकी मात्रा लगभग 32 किलो होनी चाहिए। इनमें से कोई एक खली को दाने में मिला सकते हैं।
3. **चोकर** (गेंहू का चोकर, चना की चूरी, दालों की चूरी, राइस ब्रान) - इसकी की मात्रा 35 किलो।
4. **खनिज लवण**- की मात्रा लगभग 2 किलो।
5. **नमक**- लगभग 1 किलो।

इन सभी को उक्त मात्रा के अनुसार मिलाकर अपने को पशु को खिला सकते हैं।

सन्तुलित आहार खिलाने के फायदे

पशुओं को यह सन्तुलित आहार खिलाने से बहुत फायदा होता है। क्योंकि सन्तुलित आहार देने के पीछे कारण यही होता है कि पशु को स्वस्थ रखा जाए और उसमें दूध की मात्रा बढ़ जाए।पशुओं को सन्तुलित आहार खिलाने के निम्न लाभ हैं -

इस आहार को खिलाने से गाय-भैंस अधिक समय तक दूध देते हैं पशुओं को यह काफी स्वादिष्ट और पौष्टिक लगता है और बहुत जल्दी पच जाता है। यदि देखा जाए तो यह खली, बिनौला या चने से सस्ता पड़ता है। इससे पशुओं का स्वास्थ्य ठीक रहता है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ती है। इसी के साथ रोगों से बचने की क्षमता प्रदान करता हैं ओर इससे पशु के दूध व घी में भी वृद्धि होती है।

पशुओं को कितनी मात्रा में आहार खिलाएँ

एक पशुपालक के लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि वह पशुओं को कितनी मात्रा में सन्तुलित आहार दें। हर एक पशु का अलग विशिष्ट होता है। गर्भिणी भैंस को सन्तुलित चारा की भिन्न मात्रा होगी और बछड़ी के लिए सन्तुलित आहार की मात्रा भिन्न होगी। इस प्रकार किस पशु को कितनी मात्रा में यह आहार देना है, नीचे इसकी वयाख्या दी गयी है।

सामान्य नियम

पशु के शरीर की देखभाल के लिए

गाय के लिए 1-5 किलो प्रतिदिन व भैंस के लिए दो किलो प्रतिदिन

दुधारू पशुओं के लिए

गाय प्रत्येक 2-5 लीटर दूध के पीछे एक किलो दाना।

भैंस प्रत्येक दो लीटर दूध के पीछे एक किलो दाना।

गाभिन गाय या भैंस के लिए

छह महीने से ऊपर की गाभिन गाय या भैंस को एक से 1-5 किलो दाना प्रतिदिन फालतू देना चाहिए।

बछड़े या बछड़ियों के लिए

एक किलो से 2-5 किलो तक दाना प्रतिदिन उनकी उम्र या वजन के अनुसार देना चाहिए।

पशुओं का आहार व दाना मिश्रण तैयार करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखें

1- सर्वप्रथम पशु की अवस्था के आधार पर शुष्क पदार्थ, प्रोटीन व कुल पाच्य तत्वों का निर्धारण करें।

2- तत्पश्चात् शुष्क पदार्थ के आधार पर विभिन्न आहारिक पदार्थ जैसे दाना, हरा चारा, सुखा चारा, आदि की मात्रा निर्धारित करें।

3- इस प्रकार आकलित शुष्क पदार्थ की मात्रा में यह देखें कि प्रोटीन, कुल कितने पाच्य पदार्थ उपलब्ध होंगे।

4- आहारों में तत्वों की मात्रा व पशु की कुल आवश्कता देखकर निर्धारत करें।

5- अगर किसी तत्व की मात्रा कम हो तो उसकी पूर्ति करने के लिए सबसे सस्ते आहार का इस्तेमाल करें, यदि किसी तत्व की मात्रा ज्यादा हो तो उसे सबसे महँगे आहार की मात्रा कम करें।

पशु को खिलाने-पिलाने में कौन-कौन सी सावधानियाँ रखें

1- दाना दला हुआ होना चाहिए लेकिन बारीक पिसा हुआ न हो।

2- अगर चारे की फसल पर कीड़े मारने की दवाई का छिड़काव किया गया है तो उसे छिड़काव के 15 दिन बाद ही पशुओं को खिलायें।

3- साइलेज हमेशा दूध निकालने के बाद खिलायें। इससे दूध में साईलेज की दुर्गन्ध नहीं आयेगी।

4- पशु के लिए साफ़ पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना चाहिये।

5- पशु को चारा दाना डालते समय ध्यान रखें कि यदि कोई नुकीली वस्तु जैसे कील या लकड़ी का टुकड़ा आदि, हो तो निकाल दें।

शीत ऋतु में बकरियों की देखभाल एवम् प्रबन्धन

श्यामा एन प्रभु, अवन्तिका श्रीवास्तव एवम् कविशा गंगवार

देश में लगभग 70 फीसदी भूमिहीन खेतिहर मजदूर, सीमान्त और छोटे किसान बकरी पालन से जुड़े हैं। बकरी पालन किसानों के लिए आय और रोजगार का महत्वपूर्ण स्रोत माना गया है। शीत ऋतु में बकरियों को तनावपूर्ण स्थिति से बचाने के लिए उचित देखभाल प्रबन्धन व सही खानपान की आवश्यकता होती है। यदि शीत ऋतु में बकरियों का ध्यान नहीं रखा जाए तो इनके दूध उत्पादन और विकास दर में कमी आने लगती है व बच्चों में मृत्यु दर में वृद्धि होती है। वयस्क बकरियाँ सबसे ठण्डे तापमान में जीवित रह सकती हैं लेकिन नवजात बकरी के बच्चे ठण्डे तापमान को बर्दाश्त नहीं कर सकते। बकरियाँ ठण्डी हवा और वायु में आर्द्रता के कारण निमोनिया जैसे रागों से ग्रसित हो जाती है। इसलिए इन्हें शीत से बचाने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

बकरियों के आवास व आश्रय का प्रबन्धन:

1. शीत ऋतु में फर्श को सूखा व नरम रखने के लिए घास, भूसी या पुआल से बना हुआ 4 इंच बिस्तर बकरियों के लिए अति आवश्यक है। यह उष्मा को व्यर्थ होने से रोकता है जिससे बकरियों को शरीर के तापमान को बनाए रखने में सहायता मिलती है।
2. बकरियों को आरामदायक बिस्तर प्रदान किया जाना चाहिए।
3. भूमि गर्म और सूखी होनी चाहिए।

4. शेड को गर्म व शुष्क बनाए रखने के लिए भिन्न-भिन्न उपाय किए जाते हैं। कम तापमान होने के कारण अधिक आर्द्रता की सम्भावना रहती है।
5. शीत ऋतु में बकरियों को गर्म और आरामदायक स्थान प्रदान करें।.
6. प्रत्येक बकरी को 3-5 मीटर स्थान की आवश्यकता होती है। अधिक भीड़ से बकरियों में घुटन व श्वास के रोगों की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है।
7. उन्हें उचित विकास के लिए 4 घण्टे धूप की आवश्यकता होती है।
8. दिन के समय में घुटन से बचने के लिए खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए। शेड में कम तापमान होने के कारण नमी से इन्हें बचाना आति महत्वपूर्ण है।

बकरियों के लिए खानपान एवम् जल प्रबन्धन:

1. बकरियों को शीत ऋतु में ज्यादा ऊर्जा की आवश्यकता होती है इसलिए उनके खानपान में धीरे-धीरे परिवर्तन लाना चाहिए। खानपान में एकाएक बदलाव के कारण इनमें अत्यम्लीयता (एसिडोसिस) की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है।
2. शीत ऋतु के समय बकरियों के लिए घास सबसे उपयुक्त चारा माना गया है।
3. खाने में मक्का और जई देने से इन्हें ऊर्जा मिलती है। अधिकतर बकरियों को चारे के रूप में सूखी घास खिलाई जाती है।
4. बकरों की देखभाल करना अति आवश्यक है क्योंकि इनमें ज्यादा ऊर्जा वाले खाद्य पदार्थ पथरी का कारण बन सकते हैं।
5. पाचनशक्ति कम होने के कारण बच्चों में गरिष्ठ भोजन नहीं दिया जाना चाहिए।
6. ठण्डे पानी से पाचन सम्बन्धी व्याधि होती है इसलिए शीत ऋतु में बकरियों को गुनगुना पानी देना चाहिए।

बकरी के बच्चों की देखभाल:

1. बकरी के नवजात बच्चे को गर्म आश्रय प्रदान किया जाना चाहिए।
2. बकरी के प्रसव के पश्चात नवजात बच्चे को सूखा रखना अति आवश्यक है।
3. इन्हें गुनगुना पानी देना चाहिए।
4. इन्हें ठण्ड और हवा से बचाया जाना चाहिए।

बाह्य परजीवियों से रक्षा:

शीत ऋतु के समय इनमें जूँ व किलनी का संक्रमण अधिक होता है जिसके कारण रक्ताल्पता व अन्य परजीवी जनित रोग हो सकते हैं। इनसे त्वचा की गुणवत्ता भी खराब होती है। इसके उपाय के लिए पशु चिकित्सक के परामर्श से बाह्य परजीवीनाशक औषधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

पशुओं के उपचार हेतु विभिन्न घोल, लोशन एवं मलहम बनाने की विधि तथा उनका उपयोग

राजकुमार सिंह यादव, आशी सिंह एवम् सुगम ठाकुर

हमारे देश में पशुधन की संख्या 535.78 मिलियन (20वीं पशुधन गणना, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, 2019) है, जो कि विश्व में सर्वाधिक है। पशुपालन भारत की दो तिहाई ग्रामीण जनसंख्या के लिए आय का प्रमुख स्रोत है, जिनमें सबसे अधिक संख्या छोटे एवं सीमांत किसानों की है। इन किसानों की आय सीमित होने के कारण पशु के बीमार होने की स्थिति में ये पशुपालक, पशुचिकित्सक को बुलाने और महंगी दवाइयों का खर्चा उठाने में असमर्थ होते हैं। ऐसे में आवश्यकता है कि रोज़मर्रा में उपयोग में आने वाले घोल, लोशन एवं मलहम, जिन्हें पशुपालक आसानी से उपलब्ध चीज़ों से बना सकता है यदि उन्हें बनाने की विधि का ज्ञान हो। इन्हें बनाने की विधि का ज्ञान होने से पशुपालक इन्हे महँगी दवाई के विकल्प के रूप मे प्रयोग कर सकते हैं। जिससे उनकी बचत तो होगी ही, साथ ही यह ज्ञान किसान को अपने पशु के इलाज के लिए आत्मनिर्भर बनाएगा। कुछ ऐसी ही औषधियों की विधि निम्नलिखित है-

1. पोटेशियम परमैंगनेट घोल-इसे बनाने के लिए 1-4 ग्राम पोटेशियम परमैंगनेट पाउडर को 100 मिली आसुत जल में मिलाया जाता है। इसका उपयोग एंटीसेप्टिक के रूप में घाव, फोड़े, गैंग्रीन, ओटोरिया, ल्यूकोरिया, मेट्राइटिस तथा वैजीनाइटिस आदि में धुलाई के कार्य में प्रयुक्त होता है। सामान्यत: साधारण तथा ताजे घाव, मुंह के छाले आदि की चिकित्सा एवं हाथों की धुलाई हेतु एक 1:1000 का घोल ही यथेष्ट होता है।

2. व्हिटफील्ड मलहम - 6 ग्राम बेंजोइक एसिड और 3 ग्राम सैलिसिलिक एसिड को 91 ग्राम वैसलीन में मिलाकर यह मलहम तैयार

किया जाता है। इसका उपयोग एक्जिमा, दाद आदि में एंटीफंगल एजेंट के रूप में किया जाता है।

3. नॉर्मल सलाइन घोल –इसे बनाने हेतु 9 ग्राम सोडियम क्लोराइड एक फ्लास्क में लेकर उसमें आसुत जल को मिलाकर 1 लीटर तक बना लिया जाता है। इसे ऑटोक्लेव द्वारा शोधित कर लिया जाता है। इसका प्रयोग पशु की निर्जलीकरण अवस्था में, ग्लूकोस सलाइन बनाने तथा अन्य कई कार्यों में किया जाता है।

4. एक्रीफ्लेविन घोल – इसे बनाने के लिए 0.1 ग्राम एक्रीफ्लेविन पाउडर को 100 मिली नॉर्मल सलाइन में मिलाया जाता है। इसका उपयोग एंटीसेप्टिक के रूप में घाव, कटने तथा जलने की चिकित्सा में किया जाता है।

5. लुगोल आयोडीन घोल – 5 ग्राम आयोडीन और 10 ग्राम पोटैशियम आयोडाइड को 100 मिली आसुत जल में मिलाकर इस घोल को तैयार किया जाता है। इसका उपयोग एंटीसेप्टिक की तरह और आयोडीन की कमी को पूरा करने के लिए किया जाता है।

6. मलहम – इसे बनाने के लिए 5 ग्राम वूल फैट, 10 ग्राम हार्ड पैराफिन और 85 ग्राम सॉफ्ट पैराफिन की असवश्यकता होती है। सभी आवश्यक सामग्री को पिघलाने के पश्चात् सभी घटकों को अच्छी तरह से मिलाने के बाद ठंडा कर लिया जाता है। सिंपल ऑइंटमेंट का प्रयोग अन्य मलहम (ऑइंटमेंट) को बनाने में किया जाता है। इसका उपसात्वक (एमोलिएंट) प्रभाव भी होता है।

7. बोरिक एसिड मलहम– 1 ग्राम बोरिक एसिड पाउडर को 99 ग्राम सिम्पल ऑइन्टमेंट में मिलाकर इस मलहम को तैयार किया जाता है। इसका उपयोग कटे व फटे टीट थन और पैरों के उपचार के लिए किया जाता है।

8. बोरिक एसिड लोशन– 1 ग्राम बोरिक एसिड पाउडर को आसुत जल में मिलाकर 100 मिली तक बना लिया जाता है। 1: का घोल कंजेक्टिवाइटिस की चिकित्सा में अत्यन्त उपयोगी होता है।

9. कैरन आयल– इसे लाइम वाटर तथा अलसी के तेल की समान मात्रा को मिलाकर बनाया जाता है। इसका उपयोग पशु के जले भागों के उपचार के लिए किया जाता है।

10. बोरोग्लिसरीन–12 ग्राम बोरिकएसिड को ग्लिसरीन मिलाकर 100 मिली तक बना लेते है। मुंह में छाले पड़ जाने की चिकित्सा में यह बड़ा लाभकारी होता है। इसका उपयोग खुरपका–मुहपका से होने वाले छालों में भी अत्यधिक लाभदायक होता है।

11. जिंक मलहम – 15 भाग जिंक ऑक्साइड तथा 85 भाग सिम्पल ऑइन्टमेंट विधिवत मिलाकर यह मलहम बनाया जाता है। इसका उपयोग एग्जिमा तथा अन्य घावों की चिकित्सा में किया जाता है। इस मलहम में 1: कार्बोलिक एसिड मिला देने से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है।

12. सल्फर मलहम–10 ग्राम सल्फर सबलीमेट तथा 90 ग्राम सिम्पल ऑइन्टमेंट मिलाकर इसे बनाया जाता है। इसका प्रयोग दाद–खाज, खुजली तथा मेंज आदि में होता है। इसका प्रयोग एंटीफंगल एजेंट के रूप में भी किया जाता है।

13. गोल्डन लोशन– इसे बनाने के लिए 10 ग्राम सबलाइम्ड सल्फर, 20 ग्राम क्विक लाइम तथा 100 मिली आसुत जल की आवश्यकता होती है। पहले क्विक लाइम को जल की बराबर मात्रा में मिलाएं। फिर इसमें थोड़ा जल और डालते हुए सबलाइम्ड सल्फर मिलाएं। इसे तब तक गर्म करें जब तक इसका रंग गोल्डन येलो न हो जाए। ठंडा करें और 3 दिन बाद छान लें। आसुत जल मिलाते हुए 100 मिलीमात्रा बनाएं। खुजली या मेंज की चिकित्सा मे इसका उपयोग किया जाता है।

14. मिक्चरा अल्बा– 1 ग्राम मैग्नीशियम कार्बोनेट, 2 ग्राम मैग्नीशियम सल्फेट और 0.1 मिली पुदीना के तेल को 30 मिली आसुत जल में मिला कर बनाया जाता है। इसका उपयोग अपच, ब्लोट एवं हाइपरएसिडिटी का उपचार करने के लिए किया जाता है।

15. टिंक्चर बेंज़ोइन–100 ग्राम बेंज़ोइन, 75 ग्राम स्टोरेक्स, 25 ग्राम टोलू बाल्सम और 40 ग्राम मुसब्बर (अलोए) को 1 लीटर 90: एल्कोहल में मिलाया जाता है। इस घोल को 5 –7 दिन तक रख कर छानने के बाद टिंक्चर बेंज़ोइन प्राप्त होता है। इसका उपयोग घाव को धोने और एंटीसेप्टिक के तौर पर किया जाता है। यह एक रक्तस्तंभक (हिमोस्टेट) के रूप में भी कार्य करता है।

16. रेड मर्क्युरिक आयोडाइड मलहम – 16 ग्राम लैनोलिन और 16 ग्राम सॉफ्ट पैराफिन को गर्म कर इनका मिश्रण बना कर 4 ग्राम रेड आयोडाइड ऑफ मर्करी को इसमें मिलाया जाता है। इसका उपयोग फोड़े को परिपक्व करने तथा साइनस व को नष्ट करने के लिए किया जाता है। यह कैप्ड एल्बो और योक गाल से पीड़ित पशुओं में भी प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष:

उपरोक्त दिए गए विभिन्न औषधियों का प्रयोग कर पशुपालक पशुओं में होने वाले साधारण रोगों का प्राथमिक अथवा पूर्ण उपचार स्वयं ही कर सकते हैं। इससे पशुओं को उपयुक्त उपचार शीघ्र ही मिल जाएगा, जिससे रोग के कारण उत्पन्न हुए तनाव की अवधि कम हो सकती है और पशु के उत्पादन पर भी अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। जिससे पशुपालक का व्यय कम होगा तथा वह अधिक आय सृजित कर सकेगा।

जापानी एन्सेफलाइटिस (जापानी मस्तिष्क ज्वर)- एक पशुजन्य रोग

पारुल, उदित जैन एवम् बरखा शर्मा

जापानी मस्तिष्क ज्वर एक घातक एवं संक्रामक बीमारी है जो फ्लैवि वाइरस के संक्रमण से होती है। सर्वप्रथम 1871 में इस बीमारी का जापान में पता चला था। इसलिए इसका नाम "जैपनीज इन्सेफ्लाइटिस" रखा गया है। जापानी एन्सेफलाइटिस एक वायरल संक्रमण है जो मस्तिष्क में सूजन का कारण बनता है। यह वायरस संक्रमित मच्छर के काटने से फैलता है और आमतौर पर एशिया और पश्चिमी प्रांत में पाया जाता है। ग्रामीण और कृषि क्षेत्रों से सम्बन्धित लोग इस बीमारी से पीड़ित होने की अधिक संभावना रखते हैं। बच्चे सबसे ज्यादा इस बिमारी से प्रभावित होते हैं। 250 संक्रमणों में से केवल 1 संक्रमण का ही निदान किया जाता है। जबकि ज्यादातर मामले कम गंभीर हल्के होते हैं, कुछ मामलों में मस्तिष्क में सूजन भी हो सकती है।

जापानी मस्तिष्क ज्वर और भारत -

भारतीय परिदृश्य में जापानी मस्तिष्क ज्वर

जापानी मस्तिष्क ज्वर बीमारी भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं आन्ध्र प्रदेश राज्यों में पायी जाती है। भारत में सर्वप्रथम 1955 में तमिलनाडु राज्य में मस्तिष्क ज्वर बीमारी का पता चला था। वर्तमान में यह बीमारी पूर्वी उत्तर प्रदेश में एक गंभीर स्वास्थ्य संकट बनी हुई है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर तथा कुशीनगर जिला जापानी मस्तिष्क ज्वर से सर्वाधिक प्रभावित हैं। गोरखपुर जिला इस बीमारी का केन्द्र है।

रोग वाहक -

सुअर और जंगली पक्षी मस्तिष्क ज्वर विषाणु के प्रमुख स्रोत होते हैं। इस बीमारी के वाहक मच्छर होते हैं। जापानी मस्तिष्क ज्वर एक उष्णकटिबंधीय बीमारी है जिससे विश्व में प्रतिवर्ष 68,000 लोग संक्रमित होते हैं जिनमें से 20,400 लोगों की मृत्यु हो जाती है। एशिया महाद्वीप के कुल 14 देश इस बीमारी से प्रभावित हैं जिनमें चीन भी शामिल है। इस घातक बीमारी की गणना विश्व की उपेक्षित उष्णकटिबंधीय बीमारियों में होती है। उपेक्षित उष्णकटिबंधीय बिमारियाँ वे बीमारियाँ होती हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों तथा शहरी क्षेत्रों की झुग्गी-झोपड़ियों में निवास करने वाले गरीब लोगों को प्रभावित करती हैं। राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर इन बीमारियों का प्रभाव इतना भयंकर होता है कि इन्हें गरीबी के विकास तथा उसके चिरस्थायीकरण के लिए उत्तरदायी माना जाता है। जापानी मस्तिष्क ज्वर के अतिरिक्त डेंगू बुखार, लेप्टोस्पाईरोसिस, कुष्ठ रोग, क्लेमाइडिया आदि उपेक्षित उष्णकटिबंधीय बीमारियों के अन्य उदाहरण हैं।

धान के खेतों में पनपने वाले मच्छरों से (प्रमुख रूप से क्युलेक्स ट्रायटेनियरहिंचस समूह)। यह मच्छर जापानी एनसिफेलिटिस विषाणु से संक्रमित हो जाते हैं। जापानी एनसिफेलिटिस विषाणु से संक्रमित मच्छरों के काटने से होता है। जापानी एनसेफेलाइटिस वायरस से संक्रमित पालतू सूअर और जंगली पक्षियों को काटने पर मच्छर संक्रमित हो जाते है। इसके बाद संक्रमित मच्छर पोषण के दौरान जापानी एनसेफेलिटिस वायरस काटने पर मानव और अन्य पशुओं में जाते हैं। जापानी एनसेफेलिटिस वायरस पालतू सूअर और जंगली पक्षियों के रक्त प्रणाली में परिवृधत होते हैं। जापानी एनसेफेलिटिस वायरस का संक्रमण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में नहीं होता है। उदारहण के लिए आपको यह वायरस किसी उस संक्रमित व्यक्ति को छूने से नहीं आ सकता या किसी स्वास्थ्य सेवा कर्मचारी से जिसने किसी जापानी एनसिफेलिटिस रोगी का उपचार किया हो। केवल पालतू सूअर और जंगली पक्षी ही जापानी एनसेफेलिटिस वायरस फैला सकते हैं।

लक्षण-

1. सिर दर्द के साथ बुखार को छोड़कर हल्के संक्रमण में और कोई प्रत्यक्ष लक्षण नहीं होता है।
2. गंभीर प्रकार के संक्रमण में सिरदर्द, तेज बुखार, गर्दन में अकड़न, घबराहट, कोमा जैस गम्भीर लक्षण प्रदद होते हैं।
3. कभी-कभी ऐंठन (विशेष रूप से छोटे बच्चों में) और मस्तिष्क निश्क्रियता (बहुत ही कम मामले में), पक्षाघात होता है।
4. जापानी एनसेफेलाइटिस की संचयी कालवधि सामान्यतः 5 से 15 दिन होती है।
5. इस रोग में लगभग मृत्युदर 0.3 से 60 प्रतिशत तक होता है।

उपचार-

यह रोग अलग अलग देशों में अलग अलग समय पर होता है। क्षेत्र विशेष के हिसाब से ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों में यह बीमारी अधिक होती है। शहरी क्षेत्रों में जापानी एनसेफेलाइटिस सामान्यतः नहीं होता है। अचानक सिरदर्द, उच्च बुखार, उल्टी, दौरे और विचलन जैसे लक्षण इस रोग के प्रमुख संकेत है। यदि आप बार-बार इन लक्षणों का अनुभव करते हैं तो आपको डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिए। जापानी एनसेफेलाइटिस के लिए भारत में निष्क्रिय मूसक मेधा व्युत्पन्न (इनएक्टीवेटेड माउस ब्रेन-डिराइव्ड जे) जापानी एनसेफेलाइटिस टीका उपलब्ध है।

कीटोसिस

पवनजीत सिंह एवम् दीक्षा सिंह

पशुओं को स्वस्थ्य रहने के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्वों, तरल पदार्थ, खनिज और विटामिन युक्त सन्तुलित आहार की आवश्यकता होती है। उचित पोषण हमारे पशुओं को बढ़ने, विकसित होने और प्रजनन करने की शक्ति देता है और संक्रमण से लड़ने के लिए मजबूत प्रतिरक्षा प्रदान करता है। सन्तुलित आहार की कमी होने पर पशु कई बीमारियों से ग्रसित हो सकते हैं।

कीटोसिस भी मैटाबोलिज्म से सम्बन्धित एक बीमारी है जो नकारात्मक ऊर्जा सन्तुलन के कारण होती है। यह आमतौर पर डेयरी गायों में प्रेग्नेंन्सी के दौरान आखिरी महीने में तथा प्रारम्भिक प्रसवोत्तर अवधि के दौरान हो सकती है। कार्बोहाइड्रेट और वाष्पशील फैटीएसिड का मैटाबोलिज्म बिगड़ना भी कीटोसिस का एक कारण हो सकता है। इसमें हाइपोगलयसेमिया (रक्त में ग्लूकोज का कम होना)। कीटोमीनिया (रक्त में कीटोन बॉडीज का पाया जाना), किटोनूरिया (मूत्र में कीटोन बॉडीज का पाया जाना) के साथ शरीर का वजन कम हो जाता है और साथ ही दूध उत्पादन भी कम हो जाता है। ब्याने और चरम स्तनपान के बीच की अवधि में ग्लूकोज की मांग बढ़ जाती है और इसे पूरी तरह से रोका नहीं जा सकता। ऊर्जा की कमी के कारण पशुओं में दूध का उत्पादन कम हो जाता है।

कीटोसिस के प्रकार:

- प्राथमिक कीटोसिस
- माध्यमिक कीटोसिस
- एलिमेंट्री कीटोसिस
- भुखमरी कीटोसिस

प्राथमिक कीटोसिस– यह उन पशुओं में होती है जो अच्छे व अत्याधिक शरीर के होते हैं, जिनमें उच्च स्तनपान की क्षमता होती है और उन्हें अच्छी गुणवत्ता वाला राशन दिया जाता है लेकिन यह एक नकारात्मक सन्तुलन में होती है।

माध्यमिक कीटोसिस–यह तब होता है जब अन्य बीमारियों के परिणाम स्वरुप भोजन का सेवन कम हो जाता है। भोजन के सेवन में कमी एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है।

एलिमेंट्री कीटोसिस– यह साइलेज में ब्यूटायरेट की अत्याधिक मात्रा के कारण होता है और ब्यूटायरेट साइलेज के खराब स्वाद के परिणामस्वरुप भोजन के सेवन में कमी के कारण भी होता है।

भुखमरी कीटोसिस– यह उन पशुओं में होती है जो शरीर की खराब स्थिति में होते हैं और जिन्हें खराब गुणवत्ता वाला चारा खिलाया जाता है। प्रभावित पशु सही आहार लेने से सही हो जाता है।

कीटोसिस के लक्षण–

1– 2–4 दिनों की अवधि में भूख और दूध उत्पादन में धीरे–धीरे कमी। भूख कम होने से शरीर का वजन तेजी से कम होता है।

2– पशु सामान्य रुप से उदास और पेट में दर्द के कारण चलने या खाने के लिए अनिइच्छुक हो सकता है।

3– सांस, दूध, पसीने, मूत्र में कीटोन की गंध आती है। लगभग एक महीने में पशु स्वत: भी ठीक हो जाता है अगर सन्तुलित आहार दिया जाये लेकिन दूध की उपज सामान्य स्तर पर वापिस नहीं आ पाती है।

4– पशु में कम आहार का सेवन आमतौर पर कीटोसिस का पहला संकेत है। चमड़ी के नीचे की चर्बी काफी कम हो जाने से पशु काफी कमजोर दिखाई देता है।

5– दूध उत्पादन में कमी और सुस्ती और एक खाली दिखने वाला पेट आमतौर पर कीटोसिस के लक्षण देखे गये हैं। शारिरिक परीक्षण करने पर पशु ज्वरहीन रहते हैं। रुमेन की गतिशीलता परिवर्तन शील होती है। मल सख्त और सूखा होता है लेकिन गम्भीर कब्ज नहीं होती।

प्रभावित जानवर बहुत कम मरते हैं लेकिन उपचार के बिना दूध की उपज गिर जाती है और हालांकि सहज वसूली आमतौर पर लगभग एक महीने में होती है क्योंकि स्तनपान की निकासी और भोजन के सेवन के बीच सन्तुलन स्थापित हो जाता है। दूध की उपज कभी–भी वापिस नहीं आती है। दूध की उपज में गिरावट 25 प्रतिशत तक हो सकती है।

कीटोसिस का इलाज:

पशुओं में कई प्रभावी उपचार उपलब्ध हैं लेकिन कुछ प्रभावित जानवरों में प्रतिक्रिया केवल क्षणिक होती है। दुर्लभ मामलों में रोग बना रह सकता है और मृत्यु का कारण बन सकता है।

कीटोसिस के उपचार का उद्देश्य सही मात्रा में ग्लूकोज को फिर से स्थापित करना और सीरम की टोन बॉडी की मात्रा को कम करना है।

50 प्रतिशत डेक्सट्रोज के 500 एमएल I/V एक सामान्य चिकित्सा है। यह समाधान बहुत ही हाइपर ओस्मोटिक है। यह यदि पैरावस्कूलर के रुप से दिया जाता है तो गम्भीर ऊतक, सूजन और जलन होती है। इसलिए यह सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए कि इसे I/V दिया गया है।

ग्लूकोकार्टिकोइडस जैसे डैक्सामैथासोन या आइसोफ्लूप्रेडोन एसीटेट भी

लाभदायक होते हैं। ग्लूकोकार्टिकोइड्स चिकित्सा आवश्यकतानुसार प्रतिदिन दोहरायी जा सकती है।

रोकथाम और नियंत्रण:

कीटोसिस की रोकथाम पोषण प्रबन्धन के माध्यम से होती है।

गर्भ के अन्तिम सप्ताह में पशुओं के चारे की खपत कम हो जाती है। इसलिए आहार सेवन की निगरानी की जानी चाहिए और राशन को पूरा करने के लिए समायोजित किया जाना चाहिए।

- प्रारम्भिक स्तनपान के समय पर्याप्त पोषक देना चाहिए।
- नियासिन कैल्शियम प्रोपियोनेट, सोडियम प्रोपियोनिट, प्रोपलीन ग्लाइकोल सहित कुछ फीड एसिडिक कीटोसिस को रोकने और प्रबन्धित करने में मदद कर सकते हैं।
- उच्च उत्पादन करने वाले पशुओं को भण्डारित चारा खिलाया जाता है। खराब गुणवत्ता वाला चारा आमतौर पर ऐसीटोमिनीया की ओर ले जाती है। गीला साइलेज जिसमें बहुत अधिक ब्यूटायरेट और फंफूदीदार या पुरानी और धूल भरी घास होती है मुख्य कारण है।
- प्रसव के दूसरे सप्ताह में गायों के नमूने पर रक्त शर्करा के अनुमानों का उपयोग करके पेरिपोर्ट्युरिएंट फीडिंग की पर्याप्ता का संचालन किया जा सकता है।
- पशुओं में दूध या मूत्र में कीटोन्स के लिए उनके स्तनपान के पहले या दूसरे सप्ताह में परीक्षण किया जा सकता है।
- कीटोसिस का पता लगाना और दूध की हानि और कीटोसिस से सम्बन्धित बीमारियों को राकने के लिए शीघ्र उपचार आवश्यक है।

सामिष भोजन के गुण संर्वधन हेतु विविध पाक विधियाँ

संजय कुमार भारती', विकास पाठक, अनिता एवम् मीना गोस्वामी

आजकल वैज्ञानिक आधुनिक तकनीकों के प्रयोग द्वारा किसानों को अधिक मॉस उत्पादन के लिए प्रेरित किया जा रहा है परन्तु इस मॉस उत्पादन का तब तक कोई अर्थ नहीं है जब तक इसका उचित विपणन न किया जा सके। मॉस की खपत कैसे उपभोक्ताओं पर निर्भर करती है यह किसानों को जानना अति आवश्यक है। मॉस को वैज्ञानिक पद्धति से कैसे गुणसर्वर्धित किया जाता है इसकी बुनियादी जानकारी होना और इसे उपभोक्ताओं तक प्रचारित एवं प्रसारित करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पाक कला मॉस को गुणवत्तावर्धित करने की एक प्रमुख विधि है।

पाक विधि द्वारा मॉस से अधिक सुस्वाद, सुपाच्य एवं स्वास्थ्यमय व्यंजन बनाये जाते हैं। इसके अलावा इनके कई अन्य लाभ भी हैं जैसे संयोजी उत्तक को नरम करना, स्वरूप में सुधार, जीवाणु या अन्य हानिकारक जीवों को नष्ट करना इत्यादि।

मॉस मुख्य रूप से प्रोटीन का सर्वोत्तम स्रोत होता है जो कि मॉस के कठोर एवं नरम स्वरूप के लिए उत्तरदायी है। मॉस को अति गुणवत्तायुक्त, पौष्टिक एवं स्वादिष्ट बनाने के लिए उचित पाक प्रक्रिया का चयन आवश्यक होता है। मॉस की पाक प्रक्रिया का चयन मुख्यत: इस बात पर निर्भर करता है कि मॉस का प्रकार एवं दशा कैसी है और उसका प्रयोग किस प्रकार से किया जाना है। मॉस को स्वादिष्ट और पौष्टिक बनाये रखने के लिए उचित पाक तकनीकी का चयन आवश्यक है जैसे, कठोर मॉस को लम्बे समय तक नमी एवं कम तापमान पर और नरम मॉस को अधिक तापमान और कम समय पर तैयार करना शामिल है। मॉस को पाक प्रक्रिया के माध्यम से जीवाणुमुक्त करने के लिए उचित तापमान एवं समय का चयन भी आवश्यक है।

वैज्ञानिक तौर पर मॉस पकाने के तरीकों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है–

1. शुष्क ताप
2. आर्द्र ताप
3. शुष्क एवं आर्द्र संयोजित ताप

शुष्क ताप की पाक विधियां: शुष्क गर्मी युक्त पाक कला तकनीक में मॉस को नमी का प्रयोग किये बिना ही ताप का हस्तातंरण गर्म हवा, वसा या धातु के माध्यम से कराया जाता है। इस तकनीक में अत्यधिक गर्मी, आमतौर पर 300°थ या 149°बतापमान या इससे भी अधिक तापमान का प्रयोग करना सम्मिलित है। शुष्क ताप द्वारा खाना पकाने के तरीकों के उदाहरण हैं:

रोस्टिंग (भूनना): यह एक शुष्क ताप विधि है जिसमें घी या तेल को मॉस में चुपड़ कर प्रयोग किया जाता है। मॉस को रोस्टिंग के लिए ओवन, सीधे आग, गैस लौ या विद्युत ग्रिल सलाखों पर पकाया जाता है। कुछ मॉस अधिक तापमान रोस्टिंग के लिए तो कुछ कम तापमान रोस्टिंग के लिए उपयुक्त है जैसे कि वसा आवरण युक्त मॉस, जोड़, मेमने का मॉस अत्याधिक वसा युक्त मॉस कम से मध्यम तापमान पर सबसे अच्छा भुनता है। वसा हीन मॉस, अधिक तापमान पर अच्छा रोस्ट होता है। तापमान एवं समय का संयोजन रोस्टिंग का सर्वोत्तम परिणाम दे सकता है। सामान्यत: धीमी रोस्टिंग के लिए 160°C एवं मध्यम रोस्टिंग के लिए 170–180°C और तेज रोस्टिंग के लिए 200°C या इससे अधिक तापमान उपयुक्त माना गया है।

ग्रिलिंग और ब्रॉइलिग: ग्रिलिंग एवं ब्रॉइलिंग एक शुष्क ताप पाक कला का उदाहरण है जिसमें गर्मी का संचालन खुली लौ से या गर्म हवा के माध्यम से आयोजित होता है। इस विधि में मॉस को खुली आग या प्रत्यक्ष गर्मी के सामने ऊपर या नीचे से पकाया जाता है। मॉस और ताप के स्रोत के बीच 3–4 इंच की दूरी रखी जाती है। मॉस को 2–2 इंच छोटे टुकड़ों या बोटियों में काटा जाता है। मॉस को बारी–2 से तब तक घुमाया जाता है जब तक मॉस पूर्ण रूप से पककर भूरा न हो जाये। इस तरह की पाक विधि में भोजन की सतह पर भूरापन आ जाता है जो कि मांस के जायके को परिवर्धित करता है। ग्रिल किया हुआ मॉस कम वसा युक्त भोज्य है इसमें कम ऊष्मांक होता है जिसकी वजह से यह मॉसाहारियों और स्वास्थ्य सचेत लोगो में लोकप्रिय है।

फ्राइंग:– फ्राइंग एक व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली विधि है। इसमें मॉस को चर्बी या तेल की प्रचुर मात्रा में अत्यधिक तापमान (160–200^{0}C) पर भूरा होने तक भूना/तला जाता है। यह प्रक्रिया या तो गहरी तली या उथली तली (कढ़ाई में) की जा सकती है। गहरी तली वाली प्रक्रिया में मॉस को वसा में पूरी तरह से डुबा दिया जाता है जबकि उथली तली वाली प्रक्रिया में इसे पूरी तरह से डुबाने की आवश्यकता नहीं होती है। फ्राइंग विधि में उच्च तापमान और उच्च उष्मा चालकता खाने को पकाती है इस प्रकार के तले हुए व्यंजन पदार्थ भरपूर खुशबू युक्त होने के साथ–2 आकर्षक एवं खस्ते होते हैं।

तले हुए सामिष भोजन में वसा की भरपूर मात्रा मॉस में अवशोषित हो जाती है जिससे इसमें वसा की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। इस प्रकार के तले हुए भोजन का मुख्य नुकसान रक्त में वसा और कोलेस्ट्राल के स्तर में वृद्धि होती है जो स्वास्थ्य के लिए निरापद नहीं है।

आर्द्र ताप की पाक विधियाँ:

नम गर्मी युक्त पाक कला तकनीक में भाप, पानी या किसी अन्य तरल पदार्थ में मॉस को पकाया जाता है। इस तकनीक में तापमान 70–100^{0}C या 140^{0}F – 212^{0}F से अधिक नहीं होता है। आर्द्र ताप विधि द्वारा खाना पकाने के निम्न उदाहरण हैं:

स्टीमिंग:– यह एक नम गर्मी द्वारा खाना पकाने की प्रक्रिया है जिसमें मॉस खाना पकाने के लिए प्रयुक्त तरल के सीधे सम्पर्क में नहीं होता है। इसकी बजाय आस पास के भाप (जोकि लगातार पानी के उबलने से निर्मित होता रहता है) से पकाया जाता है। कभी–2 दबाव तकनीक (प्रेशर कुकर) का प्रयोग भी इस विधि में किया जाता है। स्टीमिंग मॉस को नरम, रस दार बनाने के साथ साथ मॉस के संकुचन से भी बचाता है। जिससे मॉस का वजन भी नहीं घटता। परिणामस्वरूप तैयार उत्पाद की मात्रा अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक होती है। स्टीमिंग द्वारा मॉस को पकाने के लिए वायु मंडलीय स्टीमिंग जिसमें भाप के साथ मॉस को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पकाया जाता है। आधुनिक उपकरणों से यह संभव हुआ है कि मॉस को 70^{0}C –100^{0}C पर पकाया जा सकता है। यह विधि मॉस संरक्षण, भाप में खुला पकाने, विगलन, मॉस व्यंजन पुनर्गठन और फिर से गरम करने के लिए आदर्श है। मॉस को अच्छी तरह भापित होने के लिए आवश्यक है कि कसे हुए उपयुक्त ढक्कन का उपयोग करे जो गर्मी और नमी को खाद्य घाटियों में संरक्षित कर सके।

स्टूइंग:– स्टूइंग एक नम पाक कला विधि है जिसमें मॉस को छोटे टुकड़ों अथवा घनाकार टुकड़ों में काटकर आवरण सहित तरल में धीरे धीरे पकाया जाता है और सब्जियों को शामिल किया जाता है। यह विधि कम नरम मॉस के लिए उपयुक्त है। यह विधि ऐसे मॉस को नरम और रसदार बनाने में सक्षम है। मॉस जिसमें वसा और पतला संयोजी ऊतक एक निश्चित मात्रा में होता है जो रसदार स्टू बनाने में सहायक होता है। दुबले पतले मॉस को स्टू करने पर यह बनावट में शुष्क हो जाता है। इस विधि में मॉस पानी से डुबा होता है। गर्म पानी, मॉस के प्रोटीन को स्कंदित कर देता है जिससे मॉस में उपस्थित जल का निक्षालन हो जाता है। इस निक्षालन को रोकने के लिए मॉस को पहले कम तापमान पर पकाना आवश्यक है जिससे निक्षालन को रोकने के साथ साथ मॉस को नरम एवं नम बनाये रखने में मदद मिलती है।

माइक्रोवेव:– माइक्रोवेव पाक विधि एक आधुनिक विद्युत चुंबकीय विधि है जिसमे न तो सूखी और न ही नम तकनीक का प्रयोग होता है। माइक्रोवेव खाना पकाने, मॉस पकाने, भूनने, उबालने, दुवारा गरम करने, बर्फ मे संरक्षित खाद्य पदार्थ में से बर्फ को गलाकर हटाने (डिफ्रास्ट) के लिए यह एक उपयुक्त यन्त्र है। माइक्रोवेव ओवन विभिन्न आकार में, विभिन्न कार्य शक्ति, विभिन्न मूल्य के आते हैं। यह फायदेमन्द इस वजह से भी है क्योंकि इसमें पके खाद्य पदार्थों में विटामिन और खनिज सबसे अधिक संरक्षित रहते हैं, इससे मॉस पदार्थो को पकाने में समय भी कम लगता है। संयोजक संवहन और माइक्रोवेव ओवन सूखी गर्मी या भाप को माइक्रोवेव उर्जा में गठबंधित कर देता है। माइक्रोवेव में खाना पकाना, त्वरित, सुविधाजनक, सुरक्षित एवं किफायती है। इस विधि द्वारा मॉस के विभिन्न भागों को समान रूप से काटकर एवं माइक्रोवेव में समय संयोजन करके पारंपरिक भोजन को और अधिक स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं गुणवत्तायुक्त किया जा सकता है।

मॉस की पौष्टिकता को बनाये रखते हुए पाक विधि का चयन करना एक कठिन प्रक्रिया है परन्तु भोजन के स्वरूप एवं उसके प्रयोग के हिसाब से इसका आसानी से चयन किया जा सकता है। मॉस के स्वरूपों एवं निर्माण हेतु किये जाने वाले उत्पाद को ध्यान में रखकर आजकल सूखी गर्मी एवं नम गर्मी विधियों को मिश्रित रूप से भी प्रयोग में लाया जाता है। इससे भोजन अधिक स्वादिष्ट बनता है तथा पोषक तत्वों की हानि भी कम होती है।

टर्की पालन : किसानों के लिये एक लाभदायक व्यवसाय

अमिताभ भट्टाचार्य एवम् पंकज कुमार शुक्ला

टर्की पालन छोटे किसानों की उन्नति में बहुत सहायक हो सकता है। यह आसानी से खुले में या छोटे से बाड़े में रखे जा सकते हैं। इसके पालन व रखरखाव में खर्च भी कम आता है। किसान इसे आसानी से अपने घर के पिछवाड़े पाल सकते हैं। मूलतः टर्की पालन मांस के लिये होता है। टर्की का मांस कम वसा युक्त एवं स्वादिष्ट होता है इसलिए धनाडय वर्ग में यह बहुत प्रचलित है।

नस्ल व प्रजातियाँ –

इसकी मुख्यतः सात नस्लें हैं जिनमें से सिर्फ तीन ही ज्यादातर पाली जाती हैं। जिनके नाम हैं–

1. बेल्ट्स विलि स्माल व्हाईट 2. लार्ज व्हाईट 3. ब्रोंज

टर्की पालन व रख-रखाव-

- टर्की पालन करीब–करीब कुक्कुट पालन की ही तरह है।
- इनका बाड़ा थोड़ी ऊँचाई पर हो ताकि वहाँ पानी न जमा हो पाये।
- बाड़ा हवादार होना चाहिए एवं पानी की निकासी की सही व्यवस्था होनी चाहिए।
- फर्श ज्यादातर सीमेंट का बनता है।
- ताकि उसे साफ एवं कीटाणु रहित आसानी से रखा जा सके।
- टर्की साधारणतः खुले मैदान में एवं घर के फर्श में भूसी डाल के पाले जा सकते हैं।

चूजों का रख रखाव-

ब्रूडिंग – नन्हें चूजों को गर्मी में चार हफ्ते तक एवं ठंड में छः हफ्ते तक बाहरी गर्मी देना चाहिए। सौ चूजों के लिए सौ वाट के तीन बल्व टोकरी में फँसा के लगाये जा सकते है, चूजों की गर्मी में रखने के लिए बल्व के चारों तरफ छोटी सी बाड़ लगानी चाहिए।

खान -पान एवं पोषण:-

टर्की बहुत तेजी से बढ़ते हैं तथा हरी घास बड़े चाव से खाते हैं। अगर प्रचुर मात्रा में हरी घास उपलब्ध हो तो महंगे खाद्य पदार्थो पर खर्च कम आता है।

गृह आवश्यकता:

- पहले तीन–चार हफ्तों – एक वर्ग फुट फर्श प्रति चूजा।
- पॉच से आठ हफ्ते तक– 1.5 वर्ग फुट फर्श प्रति चूजा।
- इसे प्रकार से 10×10 वर्ग फुट के घर में चार हफ्तों तक 100 चूजे पाले जा सकते हैं।
- उसके बाद आठवें हफ्ते तक उन्हीं चूजों को 10×15 वर्ग फुट में रख सकते हैं।
- आठ से बारहवें हफ्ते के दौरान प्रति चूजों का वर्ग फुट जगह बढ़ा देनी चाहिए।
- उसके बाद सोहलवें हफ्ते तक प्रति चूजा 2.5 वर्ग फुट जगह रखनी चाहिए।
- और सोहलवे हफ्तें तक प्रति चूजा 3.5 वर्ग फुट जगह होनी चाहिए।

खुले मैदान में पलने वाले टर्की को सिर्फ एक तिहाई फर्श की जगह की आवश्यकता होती है क्योंकि वहाँ सिर्फ वर्षा एवं धूप से बचाव की ही आवश्यकता है।

स्वास्थ्य देखभाल –

- सामान्यतः टर्की कुक्कुट की तुलना में ज्यादा रोग प्रतिरोधक क्षमता वाली होती है।
- मरेक रोग एवं इन्फेक्शियस ब्रान्काईटिस रोग बिरले ही पाये जाते हैं।

खान-पान व्यवस्था

टर्की की उम्र	खाद्य पदार्थ	प्रोटीन प्रतिशत	ऊर्जा (किलो कैलोरी)
0–8 वां हफ्ता	शुरूआती खुराक	2–8	2800
8–12 वां हफ्ता	वृद्धि की प्रथम अवस्था में	22	3000
12–16 वां हफ्ता	वृद्धि की द्वितीय अवस्था में	20	3000
16 से बिकाऊ स्थिति तक	अन्तिम खुराक	16	3300

टीकाकरण

एक दिन के चूजों से लेकर पांचवें दिन तक	आर.डी. स्ट्रेन	एक बूंद ऑख एवं एक बूंद नाक में
दूसरे सप्ताह	चेचक	एक से दो बूंद पंख की झिल्ली में
चतुर्थ सप्ताह	आर.डी. स्ट्रेन	एक बूंद ऑख एवं एक बूंद नाक में
छटवॉ सप्ताह	चेचक	एक से दो बूंद पंख की झिल्ली में
आठवॉ सप्ताह	आर. 2 बी.	0.5 मि.ली. टीका मांस पेशी में।

- रानीखेत, चेचक एवं काक्सीडियोसिस हल्के तौर पर होते हैं।

रोग जो खतरनाक होते हैं-

इन्फकेशियस साइनुसाइट्स, फाऊल टाइफाइड, फाऊल कोलेरा, ब्लैक हेड, इरिसिपेलस, और राउण्ड कृमि इन्फेक्शन

टर्की मांस की पोषकता -

- टर्की मांस में वसा, ऊर्जा एवं कॉलेस्ट्राल, कुक्कुट एवं बत्तख के मांस की अपेक्षा कम होता है।
- यह विटामिन एवं खनिज तत्वों का अच्छा स्रोत है। इसमें सोडियम की मात्रा कम पाई जाती है जो कि अधिक उम्र के लोगों के लिए सुरक्षित है।
- टर्की का मांस जरूरी अमीनों अम्लों से भरपूर होता है। टर्की मांस न केवल आवश्यक वसा अम्ल से भरपूर है वरण इसमें पॉली अनसैचुरेटिड वसा अम्ल भी कुक्कुट एवं बत्तख के मांस से ज्यादा होते है।
- टर्की का मांस नियासिन एवं फास्फोरस का अच्छा स्रोत है एवं यह बढ़ते बच्चों का पोषण करता है।

भारत में टर्की पालन का महत्व -

हाल ही में कुक्कुट पालकों ने टर्की पालन में अपनी रूचि दिखाई ताकि लोगों को पोषक भोजन मिल सके। अब केवल विशेष अवसरों पर खाया जाना वाला भोजन नहीं रह गया है बल्कि आमतौर पर खाया जाता है। टर्की का मांस व्यवसायिकता के तौर से बहुत अच्छा है क्योंकि यह 120 से 125 प्रति रूपये किलो जीवित वजन तक बिकता है।

इसकी बढ़ती मांग को देखते हुए बंगाल, त्रिपुरा एवं जम्मू कश्मीर में इसकी इकाईयॉ स्थापित की जा चुकी हैं। म. प्र., राजस्थान एवं छत्तीसगढ़ में भी इसका पालन शुरू हो चुका है। अतिरिक्त आमदनी के स्रोत के रूप में इसका पालन उ.प्र., हरियाणा, दिल्ली एवं हिमाचल प्रदेश में पहले ही शुरू किया जा चुका है।

पशुओं के खुर की उचित देखभाल एवम् प्रबन्धन

अजय कुमार, दीप नारायण सिंह एवम् ममता

पशुओं में खुर का बढ़ना एक सतत् एवं सामान्य प्राकृतिक प्रक्रिया है, जो सभी खुरधारी पशुओं में पायी जाती है। जो पशु हमेशा चलते-फिरते रहते हैं, उनके खुर धीरे-धीरे घिसते रहते हैं, फलस्वरूप उनके खुर अपने उचित आकार में बने रहते हैं। परन्तु दिन-प्रतिदिन निरन्तर घटते चारागाह, चारागाहों की अनुपलब्धता, असंतुलित पशुपालन, कम जगह में ज्यादा पशुओं को बांध कर खिलाने-पिलाने, पशुओं के खुरों की उचित देखभाल व कटाई-छटाई एवं रगड़ाई के आभाव में पशु का खुर बढ़ जाता है। इस कारण पशु चलने-फिरने, खड़ा होकर चारा अथवा हरी घास खाने में धीरे-धीरे असमर्थ होने लगता है। जिससे पशु के स्वास्थ्य पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप पशु का उत्पादन, पाचन एवं प्रजनन कार्य भी प्रभावित होता है। यह समस्या छोटे पशुओं बकरी से लेकर गाय, भैंस, घोड़े एवं गधे में भी पायी जाती है। इस समस्या के कारण पशुपालकों को भारी आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है।

खुरों का अत्यधिक बढ़ने के दो प्रमुख कारण हैं -

1. लम्बे समय तक पशु को एक ही स्थान पर बधे रहने के कारण घिसावट के अभाव में निरन्तर बढ़ते रहते हैं।
2. प्राकृतिक कारण: कभी-कभी प्राकृतिक कारणों अथवा अनुवांशिक/ वंशागत गुणों के हस्तान्तरण या शारीरिक विकृति इत्यादि के कारण से भी पशुओं के खुर में तीव्र वृद्धि देखने को मिलती है। जिससे पशु के खुर सामान्य की अपेक्षा अधिक बढ़ जाते हैं।

उपरोक्त दोनों कारणों के अतिरिक्त कभी-कभी अन्य कारणों से भी खुर में वृद्धि देखने को मिलती है।

(क) उम्र ज्यादा होने के कारण भी खुर बढ़ते हैं।

(ख) कैल्शियम का क्षरण अधिक होने से भी पशुओं के खुर में वृद्धि देखी जाती है।

(ग) पशु जब अत्यधिक कमजोर हो जाता है तब भी खुर बढ़ जाता है।

(घ) बैक्टिरीयल बीमारी जो कि गंदे बाड़ों में चराई के दौरान पशु के खुरों में लगती है। उसके कारण भी खुर असामान्य हो जाते हैं।

(ड़) जब पशु चलने फिरने में असमर्थ हो जाता है तब भी खुर के अत्यधिक बढ़ने का कारण है।

(च) असंतुलित आहार खिलाने एवं खनिज लवणों की कमी से भी खुर असामान्य हो जाते हैं।

खुर बढ़ने के लक्षण

1. पशु के खुर बढ़े हुए दिखते हैं एवं पशु लंगड़ा कर चलता है।
2. पशु जब चलने की कोशिश करता है तो खुर के अत्यधिक बढ़े होने के कारण बार-बार पशु को ठोकर लगती रहती है। अत: पशु घुटनों के बल अथवा बढ़े हुए खुर के पैर को मोड़ कर चलने का प्रयास करता है।
3. पशु चलने-फिरने से परहेज करता है।
4. पशु का खुराक, उत्पादन क्षमता एवं शारीरिक वृद्धि कम हो जाती है।
5. मादा पशु समय से गर्मी में नहीं आती तथा नर पशु प्रजनन के प्रति उदासीन हो जाता है।
6. पशु के बढ़े हुए खुर में ज्यादा चोट अथवा घाव के कारण रक्त का स्राव होता है।

बचाव व रोकथाम

1. इस समस्या से बचाव व रोकथाम हेतु कभी भी पशुओं को लम्बे समय तक एक ही स्थान पर लगातार बांध कर खिलाई-पिलाई से बचें एवं यथा सम्भव पशुओं को समय-समय पर चारागाह अथवा खुले स्थान में भेजते रहना चाहिये।
2. शहरों में अथवा ग्रामीण अंचल में पशुपालन को अपनाने से पूर्व पशु चिकित्सकों एवं पशु वैज्ञानिकों से परामर्श ले लेना चाहिये तथा उनके द्वारा बताये गये सुझाव के अनुसार उपयुक्त प्रजाति के पशु का चयन पशुपालन हेतु करना चाहिए।
3. खुर बढ़े पशुओं का चयन प्रजनन व्यवसाय में नहीं करना चाहिए।
4. पशु के खुरों का भी अवलोकन करते रहना चाहिए तथा बढ़ा हुआ प्रतीत होने पर तत्काल पशु चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिये।
5. पशुओं को संतुलित आहार देना चाहिये।
6. पशु बाड़े की नियमित साफ-सफाई कराते रहना चाहिये।
7. पशुओं के खुर को कीटाणुनाशक से उपचारित कराते रहना चाहिये।

इस प्रकार बचाव व रोकथाम के उपायों को अपनाने से पशुओं में बढ़ते खुर अथवा खुर बढ़ने की समस्या को नियन्त्रित किया जा सकता है तथा पशु द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

खुर काटने के विभिन्न औजार

प्रधान सम्पादक की कलम से....

प्रिय पाठक बंधुओं,

पशुधन पत्रिका के पञ्चदश (प्रथम अंक) संस्करण जो कि आत्मनिर्भर भारत के विकास के क्षेत्र में पशुपालन का महत्व के संबंध में आवश्यक जानकारियाँ उपलब्ध के साथ आपके सम्मुख उपस्थित होते हुये मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है।

वर्तमान समय में कोरोना संकट से देश की अर्थव्यवस्था को उबारने के लिए व भारत को आत्म निर्भर बनाने के लिए कृषि, पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन की बड़ी भूमिका होगी। आत्म निर्भर भारत के लक्ष्य को दो विषयों पर जोर देकर हासिल किया जा सकता है: एक 'वोकल फॉर लोकल' और दूसरा 'स्थानीय से वैश्विक' है। आत्मनिर्भर भारत का यह अभियान आपदा को अवसर में बदलने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा और आधुनिक भारत की पहचान बनेगा। हमारी निर्भरता जब दूसरों पर कम होगी तो स्वदेशी उत्पादों को स्वाभाविक ही बढ़ावा मिलेगा और जब देश का पैसा देश मे ही रहेगा तो आर्थिक उन्नति भी होगी ही होगी।

पशुपालकों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सुविधा के हिसाब से उत्पाद खरीदने और बेचने का अधिकार व आधुनिक तकनीक और बेहतर इनपुट्स तक पहुंच भी सुनिश्चित की जाए। वर्तमान अंक गायों की मुख्य देशी नस्लों, सन्तुलित पशुपोषण तथा शीत ऋतु में बकरियों के प्रबन्धन जैसे लेख प्रस्तुत किये गये है । इनके अतिरिक्त पशुओं के उपचार हेतु विभिन्न घोल एवम् मलहम बनाने तथा इनके उपयोग की विधि भी बताई गयी है जो कि पशुपालकों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। वर्तमान अंक मे जापानी एन्सेफलाइटिस (जापानी मस्तिष्क ज्वर)- एक पशुजन्य रोग व कीटोसिस रोगों से बचाव एवं उनका नियंत्रण में किये जाने वाले उपायों जैसे उपयोगी व ज्ञानोपरक लेखों से सुसज्जित एक उत्तम संकलन है।

मुझे आशा एवं पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत अंक में छात्रों वैज्ञानिकों, पशुपालकों, शिक्षको एवं सभी पाठकों के लिये ज्ञानवर्धक होगा। तथा इसके लिये में अपने संपादक मण्डल व सभी लेखकों के साथ-साथ माननीय कुलपति महोदय का सदृश्य धन्यवाद करना चाहूँगा।

शुभकामनाओं सहित

आपका

डा. सर्वजीत यादव

निदेशक प्रसार

किसान मेला, प्रदर्शनी, कार्यशाला एवम् प्रशिक्षण कार्यक्रमों की झलकियाँ